शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय

GOVT. DIGVIJAY AUTONOMOUS POSTGRADUATE COLLEGE
RAJNANDGAON, CHHATTISGARH

(07744) 225036 (College Office) (07744) 229723 (IGNOU Office)

ईकाई– 2 इरिक्सन की मनोसामाजिक विकास की अवस्थायें–

परिचय

उद्देश्य

इरिक्सन का मनोसामाजिक सिधान्त

मनोसामाजिक अवस्थाओं की विशेषताए

मनोसामाजिक विकास की अवस्थायें

ईकाई– 2 इरिक्सन की मनोसामाजिक विकास की अवस्थायें–

1. परिचय–

अधिगमकर्ता की वृद्धि और विकास की पद्धति को स्पष्ट करने के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। इन्हीं सिद्धान्तों में सामाजिक विकास के पक्ष में मनोसामाजिक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। मनोसामाजिक सिद्धान्त इरिक्सन द्वारा प्रतिपादित है इसमें आठ मनोसामाजिक अवस्थाओं के आधार पर व्यक्तित्व विकास की व्याख्या की गई है। ''विकास'' क्या है ? यह सम्प्रत्यय जान लेना आवष्यक है

2 विकास

विकास परिवर्तनों की श्रृंखला है, जो किसी व्यक्ति की भ्रूण अवस्था से परिपक्वता तक पहुँचने के दौरान होती है। अर्थात विकास जीवन में होने वाले उन परिवर्तनों का योग है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को क्रमिक ढंग से परिपक्व बनातें हैं।

विकास की प्रक्रिया में प्रत्यागमन, वृद्धि और परिपक्वता सम्मिलित होते हैं। विकास के परिणाम स्वरूप नयी योग्यताओं का उदय सम्भव हो पाता है। विकास सदैव सामान्य से विषिष्ट की ओर चलता है। विकास कभी नहीं रूक सकता। यह जन्म से मृत्युपर्यन्त चलता है।

इरिक एरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धांतः-

परिचय– विकास के सिद्धान्तों में मनोसामाजिक सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक इरिक इरिक्सन हैं जिनका जन्म 1902 ई0 में जर्मनी के फ्रेंकफर्ट में हुआ इरिक्सन ने अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोंलैगिक अवस्थाओं के विस्तार के रूप में किया। उन्होंने अपने विचारों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन अपनी कुषल पुस्तकों में किया जैसे– 7

- चाइल्डहुड एण्ड सोसाइटी
- आइडेणटिंटी : युथ एण्ड काइसिस
- गान्धी की सच्चाई
- टॉय एण्ड रिजन
- एडल्टहुड

मनोविज्ञान के क्षेत्र में अहं मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध है। इनके द्‌वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धांत फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत से भी काफी प्रभावित है तथापि इन्होंने अपने सिद्धांत में कुछ ऐसे कारकों को भी महत्व दिया है, जिनकी चर्चा फ्रायड ने नहीं की है। जैसे कि एरिक्सन ने मानवीय व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारकों की भूमिका को भी स्वीकार किया है। इसलिये इनके सिद्धांत को व्यक्तित्व के मनोसामाजिक सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।

➢ मानव प्रकृति के संबंध में पूर्वकल्पनायें:-

प्राय: प्रत्येक मनोवैज्ञानिक ने मानव स्वभाव के संबंध में अपनी कुछ धारणाओं, मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। अत: मानव प्रकृति के संबंध में एरिक्सन की भी कतिपय (कुछ) पूर्वकल्पनाये अर्थात् मान्यतायें है। जिनसे हमें उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझने में काफी हद तक सहायता मिलती है। तो आइये, जाने कि एरिक्सन की मानव स्वभाव के संबंध में क्या-क्या धारणायें है? इनका विवेचन है-

1. एरिक्सन ने मानवीय प्रकृति में तीन तत्वों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना हैं, जो है-

2 एरिक्सन ने मानव प्रवृति के कुछ अन्य पक्षों जैसे कि वस्तुनिष्ठता अग्रलक्षता निर्धार्यता ज्ञेयता विषम स्थिति को अपने सिद्धान्त में अन्य पहलुओं की अपेक्षा कम महत्व प्रदान किया है। ने अपना ध्यान मूल रूप् से इस बात पर केन्द्रित किया है कि अहं का विकास किस प्रकार से होता है तथा इसके कार्य क्या-क्या है? अहं के विकास एवं कार्यों से उपाहं (id) तथा पराहं (Super igo) के विकास कार्यों के संबंध न के बराबर है। वस्तुत: के सिद्धान्त की मूल मान्यता यह है कि मानव मानवीय व्यक्तित्व कई अवस्थाओं से गुजरकर विकसित होता है और ये अवस्थायें शाश्वत एवं पहले से निश्चित होती है। इतना ही नहीं विकास की ये अवस्थायें विशिष्ट नियम द्वारा संचालित एवं नियंत्रित होती है जिसे पश्चजात नियम (Epigenetic puincipte) कहते है।

➢ मनोसामाजिक अहं विकास की अवस्थाओं की विशेषतायें-

एरिक्सन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'childhood and society, 1963' में मनोसामाजिक अहं विकास की 8 अवस्थायें बतायी है। एरिक्सन के अनुसार विकास की प्रत्येक अवस्था होने का एक आदर्श समय है। प्रत्येक अवस्था क्रमश: एक के बाद एक आती है और व्यक्तित्व क्रमश: विकसित होता जाता है। के अनुसार व्यक्तित्व का यह विकास जैविक परिपक्वता तथा समाजिक एवं ऐतिहासिक बलों में अन्त: क्रिया के परिणामस्वरूप होता है। इन मनोसामाजिक विकास की अवस्थाओं की कतिपय महत्त्वपूर्ण विशेषतायें है, जिनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है-

➢प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था में एक 'संक्रान्ति होती है अर्थात जीवन का वह बिंदू (Turning point) जो उस अवस्था में जैविक परिपक्वता और सामाजिक माँग में अन्त:क्रिया के परिणाम स्वरूप प्राणी में उत्पन्न होता है।

➢प्रत्येक मनोसामाजिक संकट धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों तत्वों से युक्त होते हैं। प्रत्येक अवस्था में जैविक परिपक्वता और सामाजिक माँग के कारण संघर्ष की स्थिति अवष्य ही उत्पन्न होती है यदि इस संघर्ष की स्थिति का समाधान संतोषजनक तरीके से कर लिया जाता है तो व्यक्तित्व विकास अवरूद्ध होने की सम्भावना में कमी आती है। सही तरह से व्यक्तित्व विकास के लिए धनात्मक तत्व का ऋणात्मक तत्व की तुलना में अनुकूल अनुपात होना आवष्यक है।

- प्रत्येक मनोसामाजिक संक्रान्ति में सकारात्मक (धनात्म) तथा नकारात्मक (ऋणात्मक) तत्व दोनों ही विद्यमान होते है। प्रत्येक अवस्था में जैविक परिपक्वता एवं नयी-नयी सामाजिक माँगों के कारण द्वन्द्व होना स्वाभाविक ही है यदि व्यक्ति इस द्वन्द्व से बाहर निकल आता है तो उसका व्यक्तित्व स्वस्थ रूप से विकसित होता जाता है और इसके विपरीत यदि वह इस समस्या का समाधान नही कर पाता है तो व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध हो जाता है तथा व्यक्तित्व संबंधी कई विकार उत्पन्न हो जाते है।

- व्यक्ति को प्रत्येक मनोसामाजिक विकास की अवस्था की संक्रान्ति का समाधान करना चाहिये क्योंकि ऐसा न होने पर अगली अवस्था में व्यक्ति के व्यक्तित्व का सुनियोजित एवं उत्तम तरीके से विकास नहीं हो पाता है। जब व्यक्ति संक्रान्ति का समाधान कर लेता है तो उसमें एक विशिष्ट मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्ति को ने सदाचार कहा है।

- प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था में उत्पन्न संकट ;ब्तपेपेद्ध का निराकरण आवष्यक है। ऐसा न होने पर अगली अवस्था में अपेक्षित विकास की संभावना कम हो जाती है।

- मनोसामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था में तीन आर होते है है जिन्हें तीन आर (Eripson three R's) की संज्ञा दी गई है। ये तीन आर (R) हैं-

अ. कर्मकांडता (Ritualization)

ब. कर्मकांड (Ritual)

स. कर्मकांडवाद (Ritualism)

1. **कर्मकांडता (Ritualization)-** एरिक्सन के अनुसार कर्मकांडता का अर्थ है- " समाज के व्यक्तियों के साथ सांस्कृतिक रूप से स्वीकार किये गये तरीके से व्यवहार या अन्त: क्रिया करना।"

2. **कर्मकांड (Ritual) -** कर्मकांड का अर्थ है-" वयस्क लोगों के समूह द्वारा आवृत्ति स्वरूप की मुख्य घटनाओं को दिखाने के लिये किये गये कार्य।"

3. **कर्मकांडवाद (Ritualism) -** कर्मकांडता में जो विकार उत्पन्न होता है उसे एरिक्सन ने कर्मकांडवाद का नाम दिया है। इसमें प्राणी स्वयं अपने ऊपर ध्यान केन्द्रित करता है।

5. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था का निर्माण उससे पूर्व की स्थिति में हुये विकासों से संबंध रखता है। इस प्रकार, आपने जाना कि मनोसामाजिक विकास की अवस्थाओं की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषतायें है, जिनको समझने के बाद हम एरिक्सन ने व्यक्तितव के विकास की जो अवस्थायें बतायी है, उनको आसानी से समझ सकते हैं।

- **मनोसामाजिक विकास की अवस्थाये:-**

जैसा कि आप जानते हैं कि प्रत्येक मनोवैज्ञानिक ने अपने-अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व की विकास की कुछ अवस्थायें बतायी है, जो क्रमश: एक के बाद एक आती है और उनसे होकर मानवीय व्यक्तित्व क्रमश: विकसित होता जाता है। इसी क्रम में एरिक्सन ने भी मनोसामाजिक विकास की आठ अवस्थाये बतायी है, जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकार से मानवीय व्यक्तित्व विकसित होता है। इन अवस्थाओं का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है-

मनोसामाजिक विकास की अवस्थायें:-

↓

1.शौशवावस्था: विश्वास बनाम अविश्वास

↓

2.प्रारंभिक बाल्यावस्था: स्वतंत्रता बनाम लज्जा शीलता

↓

3.खेल अवस्था: पहलशक्ति बनाम दोषिता

↓

4. स्कूल अवस्था: परिश्रम बनाम हीनता

↓

5.किशोरावस्था : अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्रान्ति

↓

6.तरूण वयास्कावस्था: घनिष्ठ बनाम विकृति

↓

7.मध्य वयास्कावस्था जननात्मका बनाम स्थिरता

↓

8. परिपक्वता: अहं सम्पूर्णता बनाम निराशा

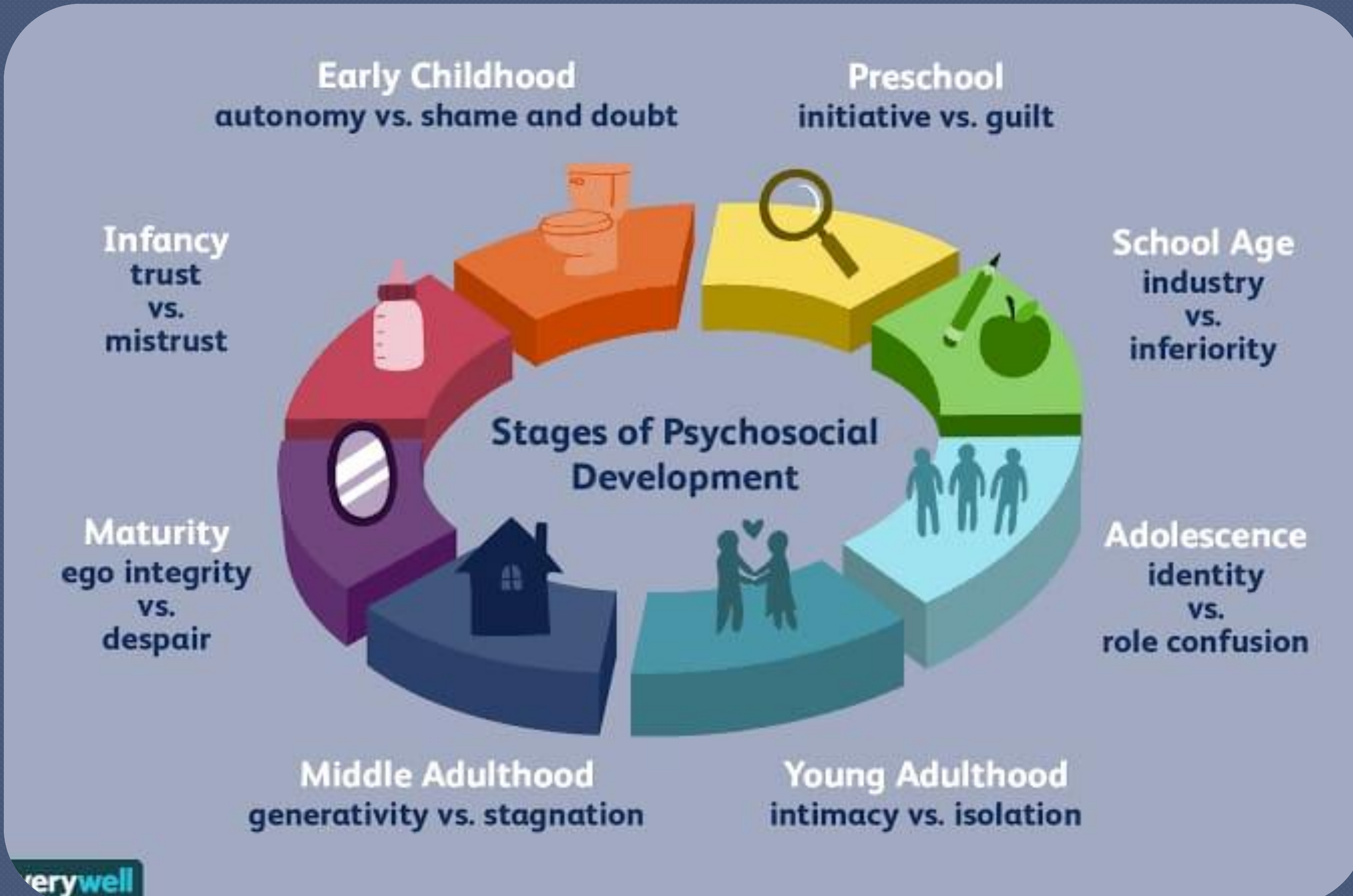
Early Childhood
autonomy vs. shame and doubt
Preschool
initiative vs. guilt
Infancy
trust
vs.
mistrust
School Age
industry
vs.
inferiority
Stages of Psychosocial
Development
Maturity
ego integrity
vs.
despair
Adolescence
identity
vs.
role confusion
Middle Adulthood
generativity vs. stagnation
Young Adulthood
intimacy vs. isolation
verywell

1.शौशवावस्था: विश्वास बनाम अविश्वास (0 से 1 ½ वर्ष) :-

फ्रायड के मनोलैंगिक विकास की मुखावस्था से समानता रखने वाली यह अवस्था जन्म से लेकर 1/½सालउम्र तक होती है।

इस अवस्था में जिस सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है। वह दूसरों तथा स्वयं में विष्वास एवं आस्था की भावना है। इस भावना का विकास माता–पिता द्वारा बच्चों की सही देख–रेख के परिणामस्वरूप होता है। अच्छी देखभाल ही दूसरों में विष्वास की भावना को बढ़ाती है, और उसमें यह भी विष्वास उत्पन्न करती है कि उसके षारीरिक अंग जैविक आवष्यकताओं को पूर्ण करने मे सक्षम हैं। इस प्रकार की भावना के विकास से बच्चों में एक स्वस्थ व्यक्तित्व के निर्माण की आधारषिला तैयार हो जाती है।

यदि किन्ही कारणों से माता–पिता बच्चे की उत्तम देखभाल करने में समर्थ नहीं होते हैं तो बच्चे में अविष्वास की भावना विकसित हो जाती है जिससे मनोसामाजिक विकास की अग्रिम अवस्थाओं में स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण अवरूद्ध हो जाता है। और वह दूसरों के प्रति डर, संदेह, आषंकाऐं जैसी अनुभूतियाँ विकसित कर लेता है।

2.प्रारंभिक बाल्यावस्था: स्वतंत्रता बनाम लज्जा शीलता :-

इस अवस्था का समय 2 वर्ष से 3 वर्ष तक होता है। यह अवस्था फ्रायड के मनोलैंगिक विकास की ''गुदा अवस्था''के समान है। इस अवस्था में स्वतंत्रता एवं आत्मनियंत्रण आदि गुणों का विकास होता है। इससे पूर्व की अवस्था में बच्चे पूर्णतः दूसरों पर निर्भर होते हैं, किन्तु इस अवस्था में उनमें न्यूरोपेषीय परिपक्वता, सामाजिक विभेद तथा शाब्दिक अभिव्यक्ति आदि की क्षमता विकसित हो जाती है और वह वातावरण को

स्वतंत्रता से अन्वेषण करना प्रारंभ कर देता है। इस अवस्था में बच्चे अधिक से अधिक काम स्वयं करना चाहते हैं इसे ''स्वायत्तता'' कहा जाता है। यहाँ स्वायत्तता का अर्थ है स्वतंत्रता, किन्तु अप्रतिबंधित स्वतंत्रता नहीं, बल्कि माता–पिता अपने नियंत्रण में बच्चों को कार्य करने की स्वतन्त्रता दें।

जब माता–पिता बच्चों से ऐसी उम्मीद रखते हैं जो उनकी क्षमता से बाहर है या फिर उन्हें छोटा समझकर कार्य नहीं करने देते हैं, तो बच्चों में लज्जाषीलता की भावना विकसित हो जाती है। जिससे अन्य मनोसामाजिक मनोवृत्तियाँ विकसित हो जाती हैं जैसे– स्वयं पर संदेह, व्यर्थता, षक्तिहीनता जब बालक स्वायत्तता बनाम लज्जाषीलता के संघर्ष का समाधान कर लेता है, तो उसमें एक मनोसामाजिक षक्ति की उत्पत्ति होती है जो ''इच्छा षक्ति'' से मिलती जुलती है। इस अवस्था में बच्चों को दूसरो का कार्य करने में आनन्द आता है वे नयी जिम्मेदारियाँ निभाने में आनन्दित होते हैं। इस षक्ति के द्वारा बच्चों में अपनी रूचि के अनुसार कार्य करने तथा आत्म संयम की क्षमता उत्पन्न होती है।

3.खेल अवस्था: पहलशक्ति बनाम दोषिता :-

इस अवस्था का समय 4 साल की आयु से 6 साल की आयु तक होता है। यह अवस्था फ्रायड की मनोलैंगिक विकास की ''लिंग प्रधान अवस्था'' से मिलती जुलती है। इस अवस्था तक बच्चों में भाषा और पेषीय कौषलों का विकास हो जाता है। अतः वे बाहर अन्य बच्चों के साथ सामाजिक खेलों में भाग लेने में रूचि लेते है।

यह ऐसी पहली मनोसामाजिक अवस्था है जहाँ बच्चों को पहली बार यह अनुभूति होती है कि उनके जीवन का भी एक उद्देष्य है। जब इस अवस्था में माता–पिता द्वारा सामाजिक कार्यों में हाथ बटाने से रोका जाता है या किसी ऐसी इच्छा पर षारीरिक दण्ड दिया जाता है तो बच्चों में अपराध भावना उत्पन्न हो जाती है। और वे बच्चे कभी स्वयं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाते और उनमें किसी लक्ष्य के प्रति निरंतर प्रयत्न करने की क्षमता समाप्त हो जाती है।

4. स्कूल अवस्था: परिश्रम बनाम हीनता :-

मनोसामाजिक विकास की यह चतुर्थ अवस्था जो 6 साल की आयु से प्रारंभ होकर लगभग 11–12 साल की आयु तक की होती है। यह फ्रायड के मनोलैंगिक विकास की अव्यक्त अवस्था के समान है। इस अवस्था में बालक औपचारिक शिक्षा के माध्यम से संस्कृति के प्रारंभिक कौषलों को सीखता है। अतः इस अवस्था को स्कूल अवस्था भी कहा जाता है। जब बच्चे प्रारंभिक कौषलों को सफलतापूर्वक सीख लेते हैं। तो उनमें परिश्रम का भाव विकसित होता है, किन्तु यदि किसी कारणवष वे कौषलों का अर्जन करने में असफल होते हैं या उन्हें स्वयं के कौषल पर संदेह हो जाता है तो उनमें हीनता/असामर्थ्यता की भावना आ जाती है। इस भावना के विकसित होने से उसे स्वयं की क्षमता पर विष्वास नहीं रहता है।

जब बालक परिश्रम बनाम हीनता के द्वन्द्व का सफल समाधान कर लेता है। तो उसमें ''सामर्थ्यता'' नामक मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है। यह शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को प्रयोग करने में सहायक होती है।

5.किशोरावस्था : अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्रान्ति :-

12 वर्ष की आयु से लेकर 19 या 20 वर्ष तक माने जाने वाली यह अवस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में सकारात्मक पक्ष के रूप में अहं पहचान और नकारात्मक पक्ष के रूप में भूमिका भ्रांति या पहचान संकट का विकास होता है इस अवस्था में किशोर पूर्व में सीखे गये ज्ञान को इस तरह संगठित करने की कोशिश करते हैं कि उनकी पहचान बनी रहे। अहं पहचान के समुचित विकास के लिए आवष्यक है कि किशोरों में वयस्क यौन भूमिकाओं का विकास हुआ हो किन्तु यदि किशोर बाल्यावस्था की अनुभूतियों या वर्तमान प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों से घिर जाते हैं तो परिणाम यह होता है कि

उनका आत्म प्रत्यक्षण दूषित हो जाता है। इससे उनमें भूमिका संभ्रम की भावना उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में किशोर दिग्भ्रमित हो जाते हैं और आगे की षिक्षा को जारी रखने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। जिससे उनमें उद्देष्यहीनता व्यक्तिगत विघटन की भावना प्रधान हो जाती हैं। कभी–कभी किशोरों में ऋणात्मक पहचान भी विकसित हो जाती है।

6.तरूण वयास्कावस्था: घनिष्ठ बनाम विकृति :-

20 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 30 वर्ष की आयु तक इस अवस्था का समय है। इस अवस्था में व्यक्ति जीवन प्रारंभ करता है। यहाँ युवक किसी न किसी व्यवसाय का चयन करता हैं, और अपना स्वतंत्र जीविकोपार्जन प्रारंभ कर देता है। इस अवस्था में व्यक्ति सही अर्थों में दूसरों के साथ सामाजिक लैंगिक, घनिष्ठता बनाने के लिए तैयार रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने परिवार और अपने संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध विकसित करता है, और स्वयं के साथ भी घनिष्ठ संबंध विकसित कर एक स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास करता है। इस अवस्था में यदि दूसरों के साथ कुछ कारणों से घनिष्ठ वैयक्तिक संबंध विकसित नहीं कर पाता है और स्वयं में ही खोया रहता है तो इसे अलगाव कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति यदि अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध बनाते भी हैं। तो वह खोखले व सतही होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में कार्य एवं व्यवसाय के प्रति नीरसता की मनोवृत्ति जाग्रत होती है। जब ''अलगाव'' की भावना की मात्रा बढ़ जाती है तो व्यक्ति में गैर–सामाजिक व्यवहार प्रबल होता है। जब व्यक्ति घनिष्ठता बनाम अलगाव से उत्पन्न संघर्ष का समाधान सफलता पूर्वक कर लेता है तो ''स्नेह'' नामक मनोसामाजिक षक्ति की उत्पत्ति होती है जो किसी संबंध को बनाये रखने में समर्पण की क्षमता से सम्बद्ध है। इसके माध्यम से व्यक्ति दूसरों के प्रति आदर, उत्तरदायित्व, आदि मनोवृत्ति दिखलाता है।

7.मध्य वयास्कावस्था जननात्मका बनाम स्थिरता :-

यह अवस्था 30 वर्ष की आयु से 65 वर्ष की आयु तक की मानी गयी है। जननात्मकता का भाव इस अवस्था में सकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में उत्पन्न होता है। जननात्मकता से तात्पर्य है कि व्यक्ति द्वारा अगली पीढ़ी के लोगों के कल्याण और साथ ही साथ उस समाज के जिसमें वे लोग रहेंगे को उन्नत बनाने की चिन्ता''।

जब व्यक्ति में जननात्मकता की भावना विकसित नहीं होती तो स्थिरता की अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति की वैयक्तिक आवष्यकताओं एवं सुख सुविधा सर्वोपरि होती है। ऐसे व्यक्ति को किसी दूसरे की चिंता तक नहीं होती। सिर्फ स्वयं की वैयक्तिक सुख सुविधा के लिए परेषान रहते हैं। इस अवस्था में मनोसामाजिक संकट का समाधान होने पर एक षक्ति उत्पन्न होती है। जिसे इरिक्सन ने 'देखभाल' कहा है। इससे कल्याण की भावना का विकास होता है।

8. परिपक्वता: अहं सम्पूर्णता बनाम निराशा:-

मनोसामाजिक विकास की यह अन्तिम अवस्था है जो 65 वर्ष की आयु से मृत्यु तक होती है। इस अवस्था को बुढ़ापे की अवस्था कहा गया है। जिसमें व्यक्ति को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जैसे प्रधानरूप से गिरते हुए षारीरिक स्वास्थ्य और षक्ति के साथ समायोजन, अवकाष प्राप्ति के बाद उत्पन्न आय में कमीं, अपने समकालीन की मृत्यु, अपने हम उम्र समूह के साथ संबंध आदि।

इस अवस्था में व्यक्ति का ध्यान भविष्य से हटकर बीते दिनों पर होता है। विषेषकर जिसमें उसने सफलता या असफलता अर्जित की है। इरिक्सन का मत है किइस अवस्था में कोई मनोसामाजिक संकट उत्पन्न नहीं होता। व्यक्ति स्वयं की पिछली मनोसामाजिक अवस्थाओं का मूल्यांकन करता है। जिससे उसमें अहंपूर्णता का भाव उत्पन्न होता है। इस अवस्था में व्यक्ति को मृत्यु से भय नहीं लगता, क्योंकि वह स्वयं का अस्तित्व जारी समझता है। इस अवस्था में व्यक्ति को बुद्धिमत्ता का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। इस अवस्था की प्रमुख मनोसामाजिक षक्ति ''परिपक्वता'' है। कोई–कोई व्यक्ति अपनी बीती मनोसामाजिक अवस्थाओं में उत्पन्न असफलताओं से चिंतित रहते हैं। ऐसे लोग अपनी जिन्दगी को अपूरित, इच्छाओं, आवष्यकताओं का एक ढेर मानते हैं इससे उनमें निराषा का भाव उत्पन्न होता है। वे स्वयं को निर्बल और असहाय समझने लगते हैं। यदि ऐसी भावना तीव्र हुई तो उसमें मानसिक विषाद भी उत्पन्न हो जाता है।

1. सिद्धान्त के गुण और दोष :-

सिद्धान्त के गुण :-

❖ इस सिद्धान्त में आषावादिता को अपनाया गया है। एक अवस्था में असफलता मिलने पर भी अगली अवस्था में सफलता मिल सकती है।

❖ व्यक्तित्व विकास की व्याख्या हेतु समाज एवं स्वयं व्यक्ति की भूमिकाओं पर बल डाला गया है।

❖इस सिद्धान्त में सम्पूर्ण जीवन अवधि के आधार पर व्यक्तित्व विकास की व्याख्या की गई है।

❖ इस सिद्धान्त में किषोरावस्था को महत्वपूर्ण माना गया है।

सिद्धान्त के दोष :-

❖ कुछ विद्वानों के अनुसार इरिक्सन के सिद्धान्त में केवल फ्रायड के सिद्धान्त का सरलीकरण हुआ है और कुछ नहीं।

❖इस सिद्धान्त को प्रयोगात्मक समर्थन प्राप्त नहीं है। सभी सम्प्रत्यय व्यक्तिगत प्रेक्षणों पर आधारित हैं। अतः वे आत्मनिष्ठ हैं।

2. ईकाई सारांष : स्मरणीय बिंदु –

- विकास परिवर्तनों की श्रृंखला है जो किसी व्यक्ति की भ्रूण अवस्था से परिपक्वता तक पहुँचने के दौरान होती है।
- सामाजिक विकास सीखने की वह प्रक्रिया है। जो समूह के स्तर परम्पराओं तथा रीति रिवाजों के अनुकूल स्वयं को ढ़ालने तथा एकता, मेलजोल और पारस्परिक सहयोग की भावना भरने में सहायक होती है।
- षैरावावस्था में अपरिपक्व व सीमित अहं केन्द्रित सामाजिक विकास होता है।
- बाल्यावस्था में कुछ क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और परिपक्वता की मात्रा भी अधिक होने से षैषवकाल की अपेक्षा सुदृढ़ सामाजिक विकास होता है।
- किषोरावस्था में सर्वाधिक, पुष्ट और परिपक्व सामाजिक विकास होता है। इस अवस्था के अन्त तक बालक पूर्ण सामाजिक परिपक्व हो जाता है।